Impact Factor (SJIF): 6.126 E-ISSN: 2583-1615, P-ISSN: 3049-3498

International Journal of Research in Academic World

Received: 10/August/2025 IJRAW: 2025; 4(9):140-145 Accepted: 22/September/2025

आधुनिक मिथिला में पुनर्जागरण का आर्थिक आयाम

*[1]डॉ. बबिता कुमारी और [2]आरती राज

*[1]सहायक प्राध्यापिका, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत।

[2]शोध छात्रा, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, बिहार, भारत।

सारांश

कर्नाट–ओइनवारकालीन मिथिला आर्थिक रूप से सम्पन्न था। यहाँ कृषि अर्थव्यवस्था का आधार था, लेकिन कृषि के साथ अनेक प्रकार के व्यवसाय एवं व्यापार–वाणिज्य भी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ता प्रदान करते थे। आर्थिक तौर पर सम्पन्न होते हुए भी समाज में आर्थिक असमानता थी। मिथिला में एक ओर जहाँ शासन सत्ता प्राप्त सुविधा सम्पन्न वर्ग था, जो विलासिता में अपना जीवन व्यतीत करता था, तो दूसरी ओर एक ऐसा वर्ग भी था जिसे जीवन यापन करना भी कठिन था। उन्हें दो समय का भोजन एवं तन ढ़ंकने के लिए अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता था। प्राकृतिक आपदाओं के कारण किसानों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। राजस्व चुकाना भी किसानों के लिए एक समस्या थी। इस अवधि में दास प्रथा अपने उच्चतम स्तर पर पहुँच गयी थी। लोगों को सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी कर्ज लेना पड़ता था। किसानों को कर्ज चुकाने के लिए अपना बैल भी बेच देना पड़ता था, जिससे कृषि कार्य प्रभावित हो जाता था। इस प्रकार मिथिला में सम्पति का असमान वितरण था, जिसके फलस्वरूप समाज सुविधा सम्पन्न तथा सुविधाहीन दो वर्ग में विभक्त हो गया था। विद्यापति तथा चण्डेश्वर के विवरणों एवं दूसरे साक्ष्यों के आधार पर ज्ञात होता है कि समाज के बहुसंख्यक हिस्से की आर्थिक विपन्नता के बावजूद शासक वर्ग की आर्थिक स्थिति काफी खुशहाल थी।

मुख्य शब्दः कृषि, अर्थव्यवस्था, मिथिला, कर्नाट एवं ओइनवार, उद्योग, शासक, जनसंख्या, वाणिज्यिक सम्बन्ध, परम्परा।

प्रस्तावना

कृषि

कृषि मिथिला की अर्थव्यवस्था का मूल आधार था तथा अधिकतम जनसंख्या कृषि पर ही आश्रित थी। सिद्धान्ततः भूमि पर राज्य का अधिकार था, परन्तु व्यवहारतः भूमि पर सामन्तों का स्वामित्व होता था, जिन्हें राज्य से अनुदान के रूप में भूमि स्वामित्व हासिल होता था। कुछ जातीय सरदार ऐसे भी होते थी जो अपनी बिरादरी के लोगों की सहायता से भूमि स्वामित्व अर्जित कर लेते थे, जिनके अधिकार को बाद में राज्य द्वारा मान्यता दे दी जाती थी। किसान जमीन पर खेती के बदले राजस्व चुकाते थे। किसान का भूमि पर अधिकार नहीं था फिर भी किसान भूमि पर पूरी मेहनत से कृषि कार्य करते थे। कृषि हल, बैल एवं कोदाली के द्वारा किया जाता था [1]। किसानों के आपसी सहयोग से कृषि कार्य किया जाता था। राज्य के द्वारा लगान कड़ाई से वसूल किया जाता था, लेकिन दूसरी ओर राजा किसानों को सुरक्षा भी प्रदान करता था। यदि किसानों का धन कोई छीनता था तो उसकी सभी वस्तुएँ जब्त कर ली जाती थी तथा देश से निष्काषित कर दिया जाता था। [2]। *राजनीतिरत्नाकर* से ज्ञात होता है कि इस समय गेहूँ, चावल, ईंख, जौ, दाल, ज्वार, मटर, प्याज, लहसुन, विभिन्न प्रकार के मसाले जैसे मेथी, मंगरैल आदि उपजाये जाते थे [3]। फलों में आम, खजूर, कटहल, जामून, केला, खरबूजा, मीठा पान का पत्ता, नारंगी, नाशपाती, निंबू, अंजीर आदि की खेती की जाती थी। केला मिथिला के सभी घरों में लगाया जाता था। गाय एवं बैल की कृषि में महत्वपूर्ण योगदान था। उस समय गाय एवं बैल की पूजा की जाती थी, जिसके पीछे आर्थिक स्वार्थ था। सिंचाई कार्य नदी से किया जाता था। कर्नाट–ओइनवार शासकों ने भी सिंचाई की व्यवस्था पर

*Corresponding Author: डॉ. बबिता कुमारी

ध्यान दिया था, [4] ताकि कृषि कार्य वर्षा के अभाव में प्रभावित न हो जाय। विद्यापति की *कीर्तिलता* में सिंचाई के उपकरणों का वर्णन आया है, जिनमें रहट [5] की चर्चा बार–बार की गई है। उस समय राजाओं एवं अभिजात्य वर्ग के द्वारा तालाब खुदवाने का विवरण प्राप्त होता है। कूप–जलाशय एवं सरोवर का वर्णन विद्यापति ने किया है। किसानों को प्राकृतिक आपदाओं का सामना भी करना होता था। मुख्यरूप से बाढ़ का खतरा अधिक रहता था तथा बाढ़ से जनता को बचाने एवं चारागाह की रक्षा करने के लिए बांध बनाया जाता था। बाढ़ के अतिरिक्त आंधी–तूफान का भी खतरा रहता था। इस समय किसानों को गृहस्थ कहा जाता था। मिथिला में राज्य शासन की ओर से भी कृषि कार्य होता था, जिसके लिए कमतिया की नियुक्ति की जाती थी। प्राचीन काल में कृषि कार्य सामान्य रूप से वैश्य वर्ण का कर्तव्य था, लेकिन अब इसके अतिरिक्त दूसरे जातियों के द्वारा भी कृषि कार्य वृहत स्तर पर किया जाता था। अध्ययन अवधि में कृषि कार्य से सर्वाधिक संख्या में शूद्र जातियों के लोग ही जुड़े थे। इस प्रकार स्पष्ट होता हे कि कृषि कार्य आजीविका का प्रमुख साधन था और समाज के प्रायः सभी वर्ग इससे प्रत्यक्षतः अथवा परोक्षतः जुड़े हुए थे।

राजस्व

प्राचीन काल से ही भूमि कर राज्य के आय का प्रमुख श्रोत रहा है, लेकिन कर की मात्रा समय–समय पर बदलती रही है। सामान्य तौर पर ऐसी धारणा है कि राजा को कर की उतनी ही मात्रा लेनी चाहिए, जिससे कृषकों को अधिक बोझ न पड़े और राजा किसानों से कर इसलिए लेता है क्योंकि वह संकट के समय उसकी रक्षा करता है। कर्नाट–ओइनवार काल में भी भूमि कर राजस्व का प्रमुख श्रोत था। उस समय कर का निर्धारण भूमि की उर्वरता के आधार पर किया जाता था [6] तथा इसके लिए भूमि का सर्वेक्षण किया जाता था। तत्कालीन समय में भूमि की तीन श्रेणियाँ होती थीं–गोचर, बंजर और उपजाऊ। गोचर भूमि में घास उपजता था [7]। बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाया जाता था। जो बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाता था, उसे उस भूमि की उपज का आठवाँ हिस्सा सात वर्ष तक देना पड़ता था। फिर उसके बाद सामान्य चलन के अनुरूप ही भूमिकर चुकाना पड़ता था। धर्मशास्त्र के अनुसार राजा को किसानों से उपज का आठवाँ, छठा या चौथा भाग कर के रूप में वसूलने का अधिकार था। कर्नाट–ओइनवार काल में मिथिला में कर निर्धारण कितना था, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं होता है। उस समय संभवतः अन्न एवं सिक्का के रूप में भूमि कर लिया जाता था।

राज्य के किसानों से राजस्व वसूलने के लिए अनेक कर्मचारियों की नियुक्ति की गई थी, जिनमें सबसे बड़ा कर्मचारी चौधरी कहा जाता था। इसके अतिरिक्त कार्यी, कर्षी, ओसथि, मोकद्दम आदि अधिकारी राजस्व वसूलने का कार्य करते थे। उस अधिकारी को सफल अधिकारी माना जाता था, जो राजस्व वसूल कर राज्य की आय को बढ़ाता था [8]। कर वसूली में राजा या राज्याधिकारियों की ओर से किसी प्रकार की रियायत नहीं दी जाती थी। मिथिला में भूमिकर के अतिरिक्त जलकर, वनकर एवं व्यापारी से लिया जानेवाला शुल्क भी राज्य की आय के प्रमुख श्रोत थे। व्यापारी वर्ग अपने कुल पूँजी का सोलहवां भाग कर के रूप में राज्य को देता था [9]। इसके अतिरिक्त हाट लगानेवालों से भी कर लिया जाता था। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मिथिला में कर्नाट–ओइनवार काल में राजस्व वसूलने की एक विकसित व्यवस्था काम कर रही थी। अधिकारी वर्ग की नियुक्ति का उद्देश्य समय पर अधिक से अधिक राजस्व प्राप्त करना था। गाँवों में स्थानीय संस्थाओं के द्वारा राजस्व वसूल किया जाता था। लेकिन प्राकृतिक संकट आ जाने पर कर में रियायत की जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती है। विभिन्न श्रोतों से जो जानकारी प्राप्त होती है उसके अनुसार कर वसूली में राज्य किसी प्रकार का दया भाव प्रदर्शित नहीं करता था। जिसके कारण कृषकों में असंतोष का जन्म हुआ था। लेकिन इसका राज्य शासन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

राज्य के प्रत्यक्ष नियंत्रण वाले क्षेत्र के अतिरिक्त स्थानीय राजाओं, सामन्तों, सरदारों की छोटी–छोटी रियासतें होती थी। स्थानीय शासक ही अपने अधीनस्थ क्षेत्रों में राजस्व उगाहते थे और राजा को एक निश्चित धनराशि नियमित रूप से प्रदान करते थे। राज्य के अधिकांश हिस्सों पर इन्हीं का अधिकार था, जो राजा की अधीनता स्वीकार करते थे तथा वार्षिक राजस्व देते थे, परन्तु स्थानीय अर्थव्यवस्था पर इनका स्वयं का नियंत्रण होता था। राज्य द्वारा अनुदत्त भूमि से भी भेंट, नजराना के रूप में थोड़ी बहुत राजकीय आमदनी हो जाती थी।

उद्योग धंधे

सदियों की अराजकता और अशान्ति के बाद कर्नाटों ने मिथिला में शांति और व्यवस्था की स्थापना की जो ओइनवारों के शासनकाल तक जारी रही। फलतः उद्योग–धंधों को विकसित होने के लिए इस अवधि में उपयुक्त संसाधन उपलब्ध हुए।

काष्ठकर्म, चर्मकर्म तथा धातुकर्म के अलावे वे सारे उद्योग एवं शिल्प विकसित हुए, जिनसे समाज की भौतिक जरूरतें पूरी होती थीं। मिथिला में उद्योग धंधों के विकास की जानकारी तत्कालीन साहित्य में व्यापार–वाणिज्य सम्बन्धी उल्लेखों से मिलती है। उद्योग एवं शिल्प की अधिशेष सामग्रियाँ स्थल और जलमार्ग से भेजी जाती थीं। स्थानीय विपणन में घोड़ा, गदहा, बैल के अलावे मनुष्य द्वारा भी कंधे पर भार ढ़ोकर ले जानेवाले भरिया तथा महिला का उपयोग परिवहन साधन के रूप में किया जाता था। [10] उत्पादित सामग्रियाँ स्थानीय हाट–बाजार में बेची जाती थीं, जिनके व्यापार से राज्य को शुल्क के रूप में काफी आमदनी होती थी। [11] विद्यापति की रचनाओं से पता चलता है कि मिथिला की उत्तम सामग्रियों की मांग विदेशों में भी थी। [12] अतः मिथिला के

कुछ प्रमुख उद्योग धंधों की चर्चा अपेक्षित होगी।

1. **वस्त्र उद्योगः** कर्नाट एवं ओइनवारकालीन में वस्त्र उद्योग, लोहा उद्योग, पोत बनाने का उद्योग, दुग्ध उद्योग, चर्म उद्योग आदि उद्योग–धंधा मिथिला की समृद्धि का आधार था। मिथिला में वस्त्र उद्योग उन्नत अवस्था में था। सूती–ऊनी एवं रेशमी वस्त्रों का प्रचलन अत्यधिक था। *वर्णरत्नाकर* से ज्ञात होता है कि उस समय 80 प्रकार के वस्त्र प्रचलित थे [13]। नेपाल एवं चीन के साथ बड़े पैमाने पर वस्त्र व्यापार होता था। चीन के साथ व्यापार के कारण ही मिथिला में रेशम वस्त्र का प्रचलन अधिक हुआ। *दानवाक्यावली* से ज्ञात होता है कि नेपाल निर्मित कम्बल एवं रेशमी वस्त्र मिथिला में काफी प्रचलित था। बंगाल का वस्त्र जिस पर कसीदा कढ़ा रहता था, भी काफी लोकप्रिय था। मिथिला में रंगीन कपड़ा का उपयोग भी बृहत् पैमाने पर होता था। कपड़ा को रंगने के लिए प्राकृतिक रंगो एवं नील का प्रयोग किया जाता था। मूल्यवान कपड़ा अभिजात्य वर्ग के लोग मुख्य रूप से पहनते थे। मिथिला के सभी घरों में सूत की कताई होती थी तथा वस्त्र बुना जाता था। वस्त्र उद्योग मिथिला में आय का प्रधान स्त्रोत था। वस्त्र उद्योग मिथिला में व्यवस्थित रहने के बावजूद सभी लोगों को प्राप्य नहीं था। अमीर वर्ग के लोग मूल्यवान वस्त्र पहनते थे, जबकि गरीब लोागें को तन ढ़ंकना भी मुश्किल था।
2. **चीनी उद्योगः** धर्मस्वामिन के विवरण से ज्ञात होता है कि मिथिला में चीनी का उद्योग काफी विकसित था [14]। मिथिला की मिट्टी ईख के लिए उपयुक्त थी। अतः यहाँ चीनी उद्योग का विकास हुआ। ईख से गूड़ भी बनाया जाता था, जो स्वास्थ्यवर्द्धक था। मिथला में ईख के रस का भी प्रचलन था।
3. **धातु उद्योगः** मिथिला में लोहा, ताँबा, सोना, चाँदी आदि धातुओं का उद्योग समुन्नतावस्था में था। लोहा उद्योग अन्य धातु उद्योगों में सबसे प्रमुख था। लोहा से कृषि उपकरणों का निर्माण किया जाता था। चाकू, कैंची, तलवार, कुल्हाड़ी आदि लोहे से निर्मित होते थे। इन उपकरणों का स्थानीय स्तर पर खपत होता था तथा इसे बाहर भी भेजा जाता था। मिथिला के लावापुर गाँव में उच्च कोटि के अस्त्र–शस्त्र का निर्माण होता था, जो वैशाली जिले में अवस्थित था। *वर्णरत्नाकर* से ज्ञात होता है कि लोहा से तीर–धनुष बनाया जाता था और इसके अलावे 36 प्रकार के अन्य अस्त्र–शस्त्र बनाये जाते थे। [15] सोना तथा चाँदी आभूषण निर्माण के काम आते थे जो महिलाओं के साथ पुरूष भी पहनते थे। ताम्बे के बर्तन बनाए जाते थे। उच्च वर्ग के लोग ताम्बे के बर्तन का ही अधिकाधिक उपयोग करते थे, जिसके फलस्वरूप इस उद्योग को विकसित होने का अवसर मिला। किन्तु मिथिला में धातुएँ उपलब्ध नहीं थीं, अतः धातुएँ बाहर से मँगायी जाती थीं।
4. **रंगाई–कढ़ाई उद्योगः** कपड़ा को विभिन्न रंगो में रंगा जाता था। रजक के द्वारा नीला, लाल, पीला रंग में कपड़ा को रंगा जाता था। इसके अतिरिक्त कसीदा उद्योग भी इस समय विकसित हुआ। कपड़ों पर सोना, चाँदी तथा जड़ी के धागों से कसीदाकारी की जाती थी। ऐसे वस्त्र काफी मँहगे होते थे। अतः अमीर लोग ही इनका उपयोग करते थे।

इन उद्योग धन्धों के अतिरिक्त नाव बनाना भी इस समय एक उद्योग था, क्योंकि जलमार्ग से व्यापार होने के कारण नाव की मांग अधिक थी। इस समय बनने वाले 29 प्रकार के नावों की जानकारी प्राप्त होती है। इसके अलावा ईंट एवं खपड़ा उद्योग गृहनिर्माण सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्त्ति की दृष्टि से संतोषजनक था। तत्कालीन लोकगीतों से जानकारी प्राप्त होती है कि उस समय मकान खपड़ा के बने होते थे। विद्यापति की *कीर्तिलता* से ज्ञात होता है कि उस समय चमड़ा उद्योग भी अस्तित्व में था। [16] *वर्णरत्नाकर* के अनुसार उस समय पटसन, मूंज और कुश की रस्सी तथा मिट्टी के बर्तन बनाए जाते थे और पत्ता एवं बाँस से अनेक घरेलू उपकरणों का निर्माण किया जाता था। मिट्टी के बर्तन का उपयोग मिथिला के लोग धार्मिक अवसरों पर भी करते थे। मिट्टी के बर्तन का निर्माण चाक पर किया जाता था। जिनमें मिट्टी का कटोरा, ढ़क्कन, तेल, अनाज तथा पानी रखने का पात्र, खाना बनाने का बर्तन आदि का उपयोग प्रमुख रूप से होता था।

व्यापार–वाणिज्य

कर्नाट–ओइनवारकालीन मिथिला में आंतरिक एवं बाह्य व्यापार पूर्ण रूप से संगठित था। स्थानीय व्यापार पारस्परिक आदान–प्रदान के आधार पर व्यवस्थित था। श्रोतों से ज्ञात होता है कि देश में व्यापारी एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में आते थे तथा व्यापार करते थे। व्यापारी क्षेत्र विशेष के बाजार में आते तथा अपना सामान बेचते थे। मिथिला में राजधानी के चारों दिशाओं में बाजार अवस्थित होने की पुरानी परम्परा थी [17], इस अवधि में राजधानी एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र का भी काम करता था और इसके चातुर्दिक बाजारों–मंडियों की श्रृंखला होती थी। इन बाजारों में गाँवों में उत्पादित वस्तुएँ बेची जाती थीं। आंतरिक व्यापार स्थल एवं जलमार्ग से किया जाता था। लेकिन जलमार्ग व्यापारियों के लिए अधिक सुरक्षित था। स्थलमार्ग से व्यापार सुरक्षित नहीं माना जाता था। स्थलमार्ग से व्यापार व्यापारियों का दल बनाकर किया जाता था, जिसके प्रमुख को सार्थवाह कहा जाता था, जिसे मार्ग के विषय में पूर्ण ज्ञान होता था तथा वह सुरक्षित मार्ग से व्यापार करता था। मिथिला चावल, गेहूँ, दाल, तेल, घी, तम्बाकू, जूट, सिल्क, हाथीदाँत, घरेलूपक्षी आदि सामग्रियाँ बंगाल को भेजता था तथा यहाँ से सूती वस्त्र, औषधि, सिन्दूर आदि राजगढ़, चम्पा एवं वाराणसी को भेजा जाता था। [18] मिथिला बंगाल से कर्पूर, चन्दन की लकड़ी, नमक, ऊनी वस्त्र मँगाता था। राजगढ़ से अफीम, कागज तथा सूत; वाराणसी से शिल्क एवं सूती

वस्त्र; कलिंग से हाथी तथा उत्तरपूर्व से घोड़ा मँगाता था। इस प्रकार स्पष्ट होता हे कि मिथिला व्यापार वाणिज्य का प्रमुख केन्द्र था। अपनी आवश्यकता को दूसरी जगह की वस्तुएँ प्राप्त कर पूरा करता तथा अपने यहाँ की वस्तु दूसरी जगह भेजकर धन प्राप्त करता था।

प्राचीन काल की तरह इस अवधि में भी मिथिला का विदेशों से भी वाणिज्यिक सम्बन्ध था। मिथिला अपने यहाँ की निर्मित वस्तुएँ ताम्रलिप्ति तथा भरूकच्छ के बंदरगाहों पर भेजता था। सुगन्धित चन्दन, वृक्ष का छाल, नील, जूट, चीनी, अफीम, सुगन्धित चावल, नारियल, केला, प्याज, मसाला आदि वस्तुओं के अतिरिक्त मसाला, तम्बाकू, सुगन्धी, तोता, बन्दर आदि विदेशी बाजारों में भेजा जाता था। [19] विदेशी बाजार से टिन, शीशा, मोती, सोना, चाँदी, खजूर आदि मँगाता था। मिथिला के शासकों ने व्यापार–वाणिज्य को संरक्षित किया। ज्योतिरीश्वर के *वर्णरत्नाकर* में अनेक ऐसी उपभोक्ता एवं विलास सामग्रियों के नाम हैं जिन्हें आयात कर ही उपलब्ध किया जा सकता था। किन्तु इस अवधि में व्यापार–वाणिज्य प्राचीनकालीन स्तर को प्राप्त नहीं कर सका। दरअसल पूर्व मध्यकालीन अराजकता के दौर में व्यापार वाणिज्य लगभग ध्वस्त हो गया था। कर्नाट–ओइनवार काल में इसका पुनरूद्धार हुआ।

कर्नाट–ओइनवारकालीन मिथिला में व्यापार–वाणिज्य को प्रोत्साहित करने के लिए ऋण देने की व्यवस्था थी, जिससे व्यापारी अपने व्यापर को बढ़ा सकते थे। निबन्धकारों ने इसके लिए अलग से व्यवस्था दिया। चण्डेश्वर के अनुसार ब्याज की दर 2 प्रतिशत प्रतिमाह होती थी। धन के अतिरिक्त आवश्यक वस्तुएँ भी ब्याज पर उधार प्राप्त की जा सकती थीं। चण्डेश्वर ने *विवादरत्नाकर* में उधार दिए जानेवाली वस्तुओं की सूची दी है [20]। इस समय सभी वस्तुओं पर कर की दर भी निर्धारित की गयी थी। नमक, तेल, घी आदि वस्तुओं पर आठवाँ भाग और सोना तथा चाँदी पर पाँचवाँ भाग ब्याज के रूप में लिया जाता था। विद्यापति की *लिखनावली* से ज्ञात होता है कि ब्याज पर उधार देने का व्यवसाय काफी फायदेमन्द था। साथ ही *लिखनावली* से ही ज्ञात होता है कि बनिया किस प्रकार चालाकी से दूसरे को ठगता था। लेकिन इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि महाजन द्वारा ब्याज पर धन देने से लोग समय पर अपनी आवश्यकताएँ पूरी कर सकते थे तथा व्यापारी अपने व्यापार को बढ़ा सकते थे।

मुद्रा

मिथिला में कर्नाट–ओइनवार शासनकाल में मुद्रा का प्रचलन था, लेकिन इस काल में प्रचलित मुद्रा का अवशेष कम ही प्राप्त हुआ है। *दंडविवेक* से ज्ञात होता है कि उस समय मिथिला में मुद्रा का प्रचलन था। मिथिला में आहत सिक्के का प्रचलन का प्रमाण प्राप्त हुआ है, जो पूर्णियाँ तथा हाजीपुर से प्राप्त हुआ है। सिक्के के कई विशाल भण्डार प्राप्त होने से यह ज्ञात होता है कि संभवतः विपत्ति काल के लिए सिक्का जमा किया जाता था। सोना, चाँदी एवं ताँबा के सिक्के का प्रचलन था। मिथिला में कौड़ी विनिमय का एक प्रमुख लोकप्रिय साधन था [21]। मिथिला में बृहत पैमाने पर प्रचलित व्यापार–वाणिज्य से भी ज्ञात होता है कि उस समय मुद्रा का प्रचलन पूर्ण रूपसे होता था। *दंडविवेक* के अनुसार उस समय मिथिला में पण, दिनार, मासा, निस्क, काकिनी, धनिका आदि का प्रचलन था। वाचस्पति ने मिथिला में काकिनी, कर्षापण, कृशनल, मासा, निष्क आदि सिक्के का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त तुगलक शासक मुहम्मदबिन तुगलक ने मिथिला में अपना सिक्का चलाया था, जो चाँदी के बदले ताँबा का था। लेकिन इसका मूल्य चाँदी के समान था। फलतः यह योजना असफल हो गई। इस अवधि में प्रचलित मुद्राओं का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित हैः–

1. **टंकाः** सोना एवं चाँदी से निर्मित सिक्का टँक कहलाता था। ज्योतिरीश्वर के *धूर्तसमागम* नाटक से मिथिला में टँक सिक्का के प्रचलन का प्रमाण मिलता है। इस नाटक से ही ज्ञात होता है कि टंक सोना का सिक्का होता था। साथ ही चाँदी का टँक सिक्का होने का प्रमाण भी प्राप्त होता है।
2. **पणः** ताँबा का सिक्का पण कहलता था। तिब्बती यात्री धर्मस्वामिन के विवरण से ज्ञात होता है कि उस समय मिथिला में पण का प्रचलन बहुतायत में था। धर्मस्वामिन के अनुसार एक पण का मान 80 कौड़ी के बराबर था [22]। इस समय कौड़ी का मूल्य बहुत कम था। *विवादचिन्तामणि* से ज्ञात होता है कि यदि पण सिक्का से कोई वस्तु खरीदा जाता तो उस पर कर नहीं देना पड़ता था [23]।
3. **मासाः** वाचस्पति के द्वारा दिए गए विवरण से मिथिला में मासा सिक्के के प्रचलन का ज्ञान होता है। पण का बीसवाँ भाग एक मासा का सिक्का होता था। इस समय स्वर्ण, चाँदी एवं ताँबा के मासा सिक्कों का प्रचलन था। उस समय के साहित्यिक श्रोतों से ज्ञात होता है कि फसल रक्षा से सम्बन्धित जिस मासा का नाम आया है वह चाँदी का था।
4. **कौड़ीः** कौड़ी का मूल्य सबसे कम था, लेकिन जनसामान्य में कौड़ी ही विनमय का माध्यम था।
5. **सुवर्णः** सोलह भाषा एक सुवर्ण के बराबर होता था। वर्द्धमान के अनुसार मिथिला में प्राणदण्ड के दोषी से 100 सुवर्ण दंड लिया जाता था। उसी प्रकार अंगविच्छेद का दंड 50 तथा संदर्श के दोषी को 25 सुवर्ण का दंड का विधान था। [24] *लिखनावली* से भी सुवर्ण मुद्रा के प्रचलन का ज्ञान प्राप्त होता है [25]।
6. **निष्कः** सोना का ही एक मुद्रा प्रकार निष्क कहलाता था। चार स्वर्ण एक निष्क के बराबर होता था। [26]
7. **धनिकाः** दंडविवेक के अनुसार चार कर्षापण से बना सिक्का धनिका होता था।
8. **दिनारः** सोना एवं चाँदी से निर्मित सिक्का दिनार कहलाता था। वर्द्धमान के अनुसार दिनार चाँदी की मुद्रा थी।

निस्संदेह मिथिला में कर्नाट–ओइनवार काल में विनियम का साधन मुद्रा था, क्योंकि इस समय जहाँ व्यापार–वाणिज्य का विकास हो रहा था, वहीं उस समय ब्याज पर धन उधार दिए जाने की भी जानकारी प्राप्त होती है। लेकिन इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कर्नाट शासकों ने मुद्रा प्रचलन पर ध्यान नहीं दिया। यही कारण है कि कर्नाट काल का एक भी मुद्रा प्राप्त नहीं होता है। दिल्ली सल्तनत के प्रतिनिधि प्रारंभिक ओइनवार शासकों ने भी इस दिशा में प्रयास नहीं किया। लेकिन परवर्ती शासक शिवसिंह एवं भैरवसिंह के द्वारा मुद्रा जारी करने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। तुगलक शासक मुहम्मद बिन तुगलक एवं लोदी शासक बहलोल लोदी ने मिथिला में अपने नाम का सिक्का जारी किया था।

माप–तौल

कर्नाट–ओइनवार कालीन मिथिला में माप–तौल के लिए लकड़ी एवं बाँस से निर्मित विभिन्न आकार–प्रकार के पात्र होते थे। इसके अतिरिक्त वाट का प्रयोग भी किया जाता था। वाचस्पति के द्वैतनिर्णय से धनवंतर नामक एक मापक की जानकारी प्राप्त होती है। पुस्कल नामक एक मापक भी उस समय प्रचलित था। एक पुस्कल 100 धनवंतर के बराबर होता था। विद्यापति के अनुसार पल, सेर, मासा, रत्ती, एमन, एनसा आदि उस समय के प्रचलित मापक थे [27]। वाचस्पति ने चावल मापने का एक पात्र कास्थामयमांड का उल्लेख किया है, जो लकड़ी या बाँस से बना होता था [28]। विद्यापति ने *लिखनावली* में एक खाड़ी नामक पात्र का उल्लेख किया है, जो मापने के काम आता था [29]। इसके अतिरिक्त उस समय द्रोण, जो कि लकड़ी से निर्मित होता था का भी उपयोग मापने के लिए किया जाता था। वर्द्धमान के अनुसार इस समय आढ़ भी एक प्रकार का मापक था। आठ मुट्ठी बराबर एक कुञ्चि, आठ कुञिच बराबर एक पुस्कल एवं चार पुस्कल एक आढ़ के बराबर होता था [30] जिससे मापन कार्य किया जाता था।

मजदूर एवं मजदूरी

वर्णरत्नाकर एंव *कीर्तिलता* से ज्ञात होता है कि कर्नाट–ओइनवारकालीन मिथिला में विभिन्न हस्तउद्योग एवं उद्योग धंधों का प्रचलन था। उद्योगों में मजदूरों की एक बड़ी संख्या काम करती थी। उद्योगों में मजदूरों की नियुक्ति वंशानुगत थी। मजदूरों की स्थिति अधिक मेहनत के बावजूद अच्छी न थी। मिथिला में बना समान अच्छा होता था, जो विदेशी यात्रियों के विवरण से ज्ञात होता है। मजदूरों में चमड़ा का काम करनेवाला, कपड़ा बनानेवालों, घर बनानेवालों, हथियार घर बनानेवालों की मांग इस समय अधिक थी। [31] मिथिला में उस काल में तेली, धोबी, धूनिया, धानगर, तांती आदि के द्वारा अपना संगठन बनाया गया था, जो गाँव एवं शहर के निकट रहता था तथा आवश्यकता पड़ने पर कार्य सम्पादित करता था।

कर्नाट–ओइनवार काल में राजा के द्वारा निर्माण कार्य में मजदूरों को लगाया जाता था। *वर्णरत्नाकर* में मजदूर, नौकर, दास का वर्णन प्राप्त होता है [32]। मजदूरों को ठीका के आधार पर कार्य मिलता था और यदि मजदूर बीच में काम छोड़कर भाग जाता तो उसे मजदूरी का दोगुना देना पड़ता था [33]। इस काल में मजदूरी निर्धारित था। वाचस्पति के अनुसार मजदूर को उपज का तीसरा भाग मजदूरी मिलनी चाहिए, लेकिन यदि स्वामी के द्वारा उसे भोजन एवं कपड़ा दिया जाता है तो उसे उपज का पाँचवा भाग देना चाहिए [34]।

कौटिल्य के बाद के निबन्धकारों ने स्वीकार किया है कि जब मजदूरी पूर्व निर्धारित नहीं हो तब मजदूरी कार्य एवं लगे समय के आधार पर दिया जाना चाहिए। चण्डेश्वर ने इस मत का समर्थन किया है। [35]

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि मिथिला में कर्नाट–ओइनवार काल में महत्वपूर्ण आर्थिक प्रगति हुई। कृषि बहुसंख्यक लोगों का व्यवसाय था तथा जीवन–यापक का साधन भी। कृषि के अतिरिक्त अनेक प्रकार के उद्योग धंधे एवं व्यापार–वाणिज्य का विकास इस समय की खास विशेषता थी। मिथिला का व्यापारिक सम्बन्ध अन्य देशों के साथ भी था। कर्नाट एवं ओइनवार शासकों ने राजस्व वसूलने पर विशेष ध्यान दिया तथा किसानों को समय पर राजस्व चुकाना आवश्यक था। मुद्रा का प्रचलन एवं माप–तौल का प्रचलन व्यापार–वाणिजय के विकास में सहायक सिद्ध हुआ। परिणामतः मिथिला में आर्थिक समृद्धि आयी। मिथिला की आर्थिक सम्पन्नता भी समाज में आर्थिक विषमता को खत्म न कर सकी। आर्थिक विषमता के कारण ही समाज मुख्यरूप से शोषक एवं शोषित में विभक्त था।

कर्नाट–ओइनवारकालीन मिथिला के सामाजिक–आर्थिक जीवन के सर्वेक्षण से यह जाहिर होता है कि राजनीतिक प्रणाली की भांति कर्नाट एवं ओइनवार राजवंशों को सामाजिक–आर्थिक जीवन को भी सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित करने में सफलता मिली। दरअसल हर्षवर्द्धन की मृत्यु के बाद आन्तरिक एवं बाह्य आक्रमणों, अभियानों तथा राजनीतिक उथल–पुथल का गहरा प्रभाव पड़ा था। विखंडन, बिखराव, असंतुलन और अव्यवस्था को नियंत्रित एवं व्यवस्थित करने में पाल शासकों को आंशिक सफलता मिली थी। किन्तु कर्नाट तथा ओइनवार शासकों ने मिथिला की सामाजिक–आर्थिक संरचना को दुरूस्त कर पुर्नजागरण का धरातल प्रशस्त किया। निष्कर्षतः यह इस अवधि की सामाजिक–आर्थिक प्रणाली थी, जिसने सांस्कृतिक उन्नयन की आधारशिला रखी।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. विद्यापति, लिखनावली, पृ0 22, पत्र 34
2. चण्डेश्वर, राजनीतिरत्नाकर, पृ0 61
3. विद्यापति, दानवाक्यावली, पृ0–41, 111, 196–71
4. Upendra Thakur: *op.cit*. Chepter V & VI
5. वाशुदेवशरण उग्रवाल, (सम्पा0), कीर्तिलता, पृ0–70
6. विद्यापति, लिखनावली, पृ0–10
7. R.C. Majumdar, *History of Bengal*, Vol. I, p. 643.

8. विद्यापाति, पुरूषपरीक्षा, कथा–41
9. विद्यापति, लिखनावली, पृ0–20 पत्र–29
10. वाचस्पति मिश्र, विवाद चिन्तामणि, पृ0–78–79; विवादचन्द्र, पृ0–53–54
11. उपर्युक्त, पृ0–128
12. रमानाथ झा (सम्पा0), पुरूष परीक्षा, पृ0–57
13. विद्यापति, दानवाक्यावली, पृ0–232–34
14. *Biography of Dharmaswamin*, Ch.-II, P-55-57
15. ज्योतिरीश्वर, वर्णरत्नाकर, पृ0–61
16. R.K. Choudhary, *Mithila in the Age of Vidyapati*, op.cit., P.-199
17. *Mahaumagga Jataka*, No.-546, Fausboll Ed. Vol.-VI, P.-156
18. Upendra Thakur, *op.cit.* 1956, P-462
19. *Ibid*, P-463
20. पुरूष परीक्षा, पृ0–17–19
21. मित्रा एवं मजुमदार (सम्पा0), विद्यापति, पृ0–56
22. *Biography of Dharmaswamin*, Introduction, P-28
23. वाचस्पति मिश्र, विवाद चिन्तामणि, पृ0–128
24. वर्द्धमान, दंडविवेक, पृ0–64
25. विद्यापति, लिखनावली, पृ0–47–48, पत्र–75
26. वर्द्धमान, दंडविवेक, पृ0–25ः चतुः सुवर्णिको पिष्को विज्ञेयस्तु, प्रयाणतः।
27. विद्यापाति, दानवाक्यावली, पृ0–124
28. वाचस्पति मिश्र, विवादचिन्तामणि, XXII
29. विद्यापति, लिखनावली, पत्र–78
30. वर्द्धमान, दंडविवेक, पृ0–13
31. संस्था परिमाणः पत्र सं0–3
32. R.K.Choudhary ; *Mithila in tle Age of Vidyapati, op.cit,* 1976, P-211
33. वाचस्पति, विवादचिन्तामणि, 76
34. उपर्युक्त
35. चंडेश्वर, विवादरत्नाकर, पृ0–158